UNIVERSAL LIBRARY
OU_186213
UNIVERSAL LIBRARY

साधारण-पुस्तक-माला

नागरी अङ्क और अक्षर

लेखक
महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
पं० केशवदेव मिश्र

२००१
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग

CHECKED 1950
By SL. & L.

CHECKED 1956

सातवां संस्करण
१०००
मूल्य =)

Checked 1965

Checked 1969

मुद्रक
गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव,
हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

नागरी अङ्क और अक्षर

[रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा]

१. नागरी अङ्कों की उत्पत्ति

जैसे नागरी लिपि के प्राचीन और वर्तमान अक्षरों के बीच बड़ा अन्तर है[1] वैसे ही नागरी के प्राचीन और वर्तमान अङ्कों में भी बड़ा अन्तर है। यह अन्तर केवल अङ्कों के रूपों में ही पाया जाता हो ऐसा नहीं है, प्राचीन तथा अर्वाचीन अङ्कों की लेखनशैली मे भी बड़ा भेद है। इस समय जैसे एक ही अङ्क एकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार, लाख आदि के स्थानों में आ सकता है वैसे प्राचीन अङ्क-क्रम में न था। इस लेख में मुझे भारतवर्ष के प्राचीन अङ्क-क्रम का वर्णन करना नहीं है, तो भी हिन्दी के पाठकों को इतना बतलाना आवश्यक है कि प्राचीन अङ्क-क्रम में शून्य का व्यवहार न था। एक से नव तक की संख्या बतलाने के लिए ९ अंक-चिह्न, नियत थे और ऐसे ही १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १००, १०००, १००००० आदि के लए भी भिन्न भिन्न चिह्न नियत थे। प्राचीन क्रम वर्तमान अङ्क-क्रम के समान सरल नहीं किन्तु विशेष जटिल था, जिसका विस्तृत वर्णन मैं नागरी प्रचारिणी सभा की लेख-माला की किसी आगामी संख्या में प्रकट करूँगा। इस लेख में केवल यही बतलाने का यत्न किया जायगा कि एक से नव पर्यन्त अङ्कों के प्राचीन रूप क्या थे और किस प्रकार के परिवर्तन होने पर ये वर्तमान रूप को पहुँचे हैं।

इस लेख के साथ नागरी अङ्कों की उत्पत्ति का चित्र दिया गया है, जिसमें प्रथम प्रत्येक अङ्क का वर्तमान रूप लिख कर उसके आगे = यह चिह्न रक्खा है, जिसके पीछे प्रत्येक अङ्क के भिन्न भिन्न रूपान्तर दिये

[1] इसी पुस्तक के अन्तर्गत दूसरे लेख में सम्मिलित नागरी अक्षरों की उत्पत्ति का चित्र देखो।

गये हैं। इन रूपान्तरों के मुख्य दो कारण अनुमान किये जा सकते हैं। वे ये हैं :—

(१) अङ्कों को सुन्दर बनाने का यत्न करना।

(२) शीघ्रता से तथा लेखनी को उठाये बिना अङ्क को पूरा लिखना।

उक्त चित्र में दिये हुए प्रत्येक अङ्क के रूपान्तरों का विवरण नीचे लिखा जाता है।

१—इसका चिह्न प्राचीन काल में एक आड़ी लकीर थी (—), जो नानाघाट (पूना ज़िले में), दक्षिण की नासिक आदि की गुफाओं में खुदे हुए आंध्रभृत्य (सातवाहन) तथा क्षत्रियवंशी राजाओं के शिलालेखों एवं मथुरा तथा उसके आस पास के प्रदेश में मिलने वाले क्षत्रिय और कुशन-(तुर्क) वंशी राजाओं के शिलालेखों तथा मालव, गुजरात, राजपूताना आदि पर राज्य करने वाले क्षत्रियवंशी राजाओं के सिक्कों में मिलता है (प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र ४१, कालम १ से ४ पर्यन्त देखो)। लगभग ईसवी सन् की चौथी शताब्दी तक १ का अङ्क बहुधा यही लिखा जाता था और अब भी व्यापारी लोग जहाँ रुपयों के अंकों के साथ आने का अंक लिखना होता है वहाँ इसी चिह्न को काम में लाते हैं। दूसरे रूप में थोड़ा सा घुमाव डाल कर सुन्दर बनाने का यत्न पाया जाता है। यह रूप गुप्तवंशी राजाओं के शिलालेखों में, नैपाल से मिले हुए ई० स० की आठवीं शताब्दी के आस-पास तक के शिलालेखों में तथा वल्लभी (काठियावाड़ में) राजाओं के ताम्रपत्रों में, जो ई० स० की छठी शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक के हैं, मिलता है (प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र ४१, कालम ५, ६, ७ देखो)। तीसरा रूप दूसरे से मिलता हुआ ही है, परन्तु उसमें आरम्भ के हिस्से में छोटी सी गाँठ लगाने तथा घुमाव को बढ़ाने का यत्न किया गया है। यह रूप बाबर साहब को मिली हुई प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक 'बाबर मैनुस्क्रिप्ट' में मिलता है। तीसरे रूप को नीचे की तरफ़ अधिक

बढ़ाने से चौथा रूप बना है, जो ई० स० की ग्यारहवीं शताब्दी तक की अनेक हस्तलिखित पुस्तकों में पाया जाता है। इसी से पाँचवां तथा छठा रूप बना है जो अब तक लिखा जाता है।

२—इसका चिह्न पहले दो आड़ी लकीरें (=) थीं (जिसका विवरण १ के पहले रूप के अनुसार ही है)। दूसरे रूप में इन लकीरों में कुछ घुमाव पाया जाता है, जो सुन्दरता के विचार से ही डाला गया होगा। इसका विवरण १ के दूसरे रूप के अनुसार ही है। तीसरा रूप बाबर साहब को मिली हुई उपर्युक्त हस्तलिखित पुस्तक से उद्धृत किया गया है, जिसमें लकीरों का नीचे की ओर का झुकाव बढ़ा हुआ पाया जाता है। इन दोनों लकीरों के परस्पर मिल जाने से चौथा रूप बना है जो वर्तमान २ के अङ्क से मिलता हुआ है। यह रूप लेखनी को उठाये बिना दोनों लकीरों को लिखने से बना है और अनेक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों, शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों में मिलता है।

३—इसका चिह्न पहिले तीन आड़ी लकीरें (≡) थीं, जिनमें घुमाव डालने से दूसरा रूप तथा प्रारम्भ में छोटी छोटी सी गांठ लगाने से तीसरा रूप बना है। बिना लेखनी को उठाये लिखने का यत्न करने से चौथा रूप बना है, जो वर्तमान ३ के अङ्क से मिलता हुआ है। इन भिन्न भिन्न रूपान्तरों का विवरण अङ्क २ के रूपान्तरों के अनुसार ही है। व्यापारी लोग अब तक दो और तीन आनों के अङ्कों के लिए क्रमशः दो और तीन आड़ी लकीरें (=, ≡) बनाते हैं, जो वास्तव में प्राचीन अङ्क ही हैं।

४—इसका पहिला रूप खालसी (देहरादून ज़िले में) के निकट वर्ती एक चट्टान पर खुदे हुये मौर्य (मोरी) वंशी महाप्रतापी राजा अशोक के लेख की तेरहवीं धर्माज्ञा में मिलता है, जो अशोक के समय की (प्राचीन) नागरी लिपि के 'क' अक्षर से मिलता हुआ है। दूसरा रूप नानाघाट आदि अनेक स्थानों के प्राचीन शिलालेखों में मिलता है। (प्रा. लि. लि. ४१ कालम १, २) तीसरा रूप क्षत्रियवंशी राजाओं के

सिक्कों में मिलता है जिसमें नीचे की तरफ़ की खड़ी लकीर के अन्त में घुमाव डाला गया है। उसी घुमाव को जल्दी लिखने में गाँठ का रूप देने तथा बीच की आड़ी लकीर के साथ उसको मिला देने से चौथा रूप बना है, जो वर्तमान ४ के अङ्क से बहुत ही मिलता हुआ है और दसवीं शताब्दी के आस पास की हस्तलिखित पुस्तकों आदि में पाया जाता है (प्रा. लि. लि. ४१ कालम ८)।

५—इसका पहिला रूप आंध्रभृत्यों तथा क्षत्रियों के लेखों में मिलता है। (प्रा. लि. लि. ४१, कालम १, २)। दूसरा रूप गुप्तों के शिलालेखों में मिलता है, जिसमें खड़ी लकीर को कुछ टेढ़ी बना कर सुन्दरता लाने का यत्न पाया जाता है। तीसरा रूप नैपाल के शिलालेखों तथा प्राचीन पुस्तकों में मिलता है। चौथा तथा पाँचवा रूप दोनों ई० स० की नवीं तथा दसवीं शताब्दी के लेखों में मिलता है। (प्रा. लि. लि. ४१, कालम ९), और नागरी के वर्तमान पाँच के अङ्क से मिलता है। पाँचवा तथा छठा, ये दोनों रूप इस समय लिखे जाते हैं।

६—इसका पहिला रूप मौर्यवंशी राजा अशोक के महस्राम (बंगाल के ज़िले शाहाबाद में) तथा रूपनाथ (जबलपुर ज़िले में) के लेखों में पाया जाता है, जो वर्तमान ६ के अङ्क से बहुत कुछ मिलता हुआ है, दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है और मथुरा तथा उसके आस पास से मिले हुए कुशन (तुर्क) वंशी राजाओं के शिलालेखों में मिलता है (प्रा. लि. लि. ४१, कालम ४)। तीसरा रूप दूसरे से तथा वर्तमान ७ के रूप से विशेष मिलता हुआ है और हड्डाला (काठियावाड़ में) से मिले हुए कन्नौज के पड़िहारवंशी राजा महिपाल के समय के शक संवत् ८३६ (वि० सं० ९७१ = ई. स ९१४) के ताम्रपत्र से उद्धृत किया गया है।

७—इसका पहिला रूप आंध्र भृत्यवंशी राजाओं के शिलालेखों में मिलता है (प्रा. लि. लि. ४१ कालम १, २) दूसरा रूप क्षत्रिय राजाओं के सिक्कों में पाया जाता है। (प्रा.लि. लि. ४१ कालम ३) जिसमें खड़ी लकीर के नीचे के हिस्से को कुछ बाये हाथ की ओर घुमा दिया है।

इसी घुमाव को कुछ और बढ़ाने से तीसरा तथा चौथा रूप बना है। ये दोनो क्षत्रियों के सिक्कों तथा वल्लभी राजाओं के ताम्रपत्रों में मिलते हैं। इन्हीं से वर्त्तमान ७ के अङ्क की उत्पत्ति हुई है।

८—इसका पहिला रूप आंध्र भृत्यवंशी राजाओं के शिलालेखों में पाया जाता है (प्रा. लि. लि. ४१, कालम २)। दूसरा तथा तीसरा रूप गुप्तवंशी राजाओं के लेखों में मिलता है (प्रा. लि. लि. ४१, कालम ४)। इन्हीं से वर्त्तमान ८ का अङ्क बना है।

९—इसका पहला तथा दूसरा रूप आंध्रभृत्यों के लेखों में मिलता है (प्रा लि. लि. ४१, कालम १, २)। तीसरा रूप क्षत्रियों के सिक्कों में पाया जाता है। तीसरे को शीघ्रता से लिखने के कारण चौथे रूप का प्रादुर्भाव हुआ होगा। यह रूप तीसरे रूप से और नागरी के 'उ' अक्षर से भी मिलता हुआ है और गुप्तों के लेखों में पाया जाता है। चौथे से पाँचवां रूप बना है, जिसमें बाईं ओर के नीचे के हिस्से की गोलाई बढ़ जाने से वर्तमान ९ के अङ्क से कुछ समानता आ जाती है। यह रूप ई० स० की दसवीं शताब्दी के लेखों में मिलता है। इसी का रूपान्तर छठा रूप है, जो वर्तमान समय में भी कोई कोई लिखते हैं। उसी से वर्तमान ९ का अङ्क बना है।

९—नव का यह रूप विशेष कर दक्षिण में प्रचलित है। इसके पहिले तथा दूसरे रूप का विवरण ऊपर लिखे अनुसार ही है। तीसरा रूप दूसरे से मिलता हुआ है, केवल ऊपर के हिस्से में गाँठ लगा दी गई है। इसी से शीघ्रता से लिखने के कारण चौथे रूप की उत्पत्ति हुई है।

०—शून्य का प्रचार ई० स० की छठी शताब्दी तक के शिलालेखों, ताम्रपात्रों तथा सिक्कों में नहीं पाया जाता, जिसका कारण यह है कि लगभग उस समय तक अङ्क प्राचीन क्रम से लिखे जाते थे, जिसमें शून्य की आवश्यकता ही न थी, क्योंकि १०, २०, ३० आदि अङ्कों के लिये भिन्न भिन्न चिह्न नियत थे।

२. वर्तमान नागरी अक्षरों की उत्पत्ति

मनुष्य अपनी रचना में सदा परिवर्तनशील होता है, इसी से मनुष्य की निर्माण की हुई समस्त वस्तुओं में समय के साथ सदा परिवर्तन होता ही रहता है। दुनिया भर की समस्त लिपियों में छापे के यंत्र की शोध के पूर्व समय के साथ बहुत कुछ अंतर पाया जाता है और यही दशा हमारी नागरी लिपि की भी हुई है। मध्य एशिया, जापान आदि से मिले हुए थोड़े से नागरी लिपि के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों एवं हमारे यहाँ से मिले हुए असंख्य प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र और सिक्कों की नागरी लिपि में, वर्तमान नागरी लिपि से बड़ा अंतर है जो समय के साथ क्रमशः क्रमशः होता गया है। जिसको प्राचीन नागरी लिपि का बोध न हो ऐसे विद्वान के सामने यदि अशोक के लेख का फ़ोटो रख दिया जाय तो वह उसकी लिपि को कभी नागरी न कहेगा, इतना ही नहीं किन्तु वह इस बात को सहसा स्वीकार भी न करेगा कि उस विलक्षण लिपि के परिवर्तन होते होते हमारी वर्तमान नागरी लिपि बनी है।

वर्तमान नागरी लिपि का मूल अर्थात् प्राचीन रूप मौर्यवंश के प्रतापी राजा अशोक के शिलालेखों की लिपि में मिलता है जो (लेख) विक्रम संवत् से करीब २०० वर्ष पूर्व के हैं और काठियावाड़ से उड़ीसे तक और नैपाल की तराई से माइसोर तक अनेक स्थानों में मिले हैं। अशोक के समय वह लिपि बहुधा सारे हिन्दुस्तान में वैसी ही प्रचलित थी जैसी कि इस समय नागरी लिपि है। अशोक के पूर्व नागरी का क्या रूप था और उसमें कैसे कैसे परिवर्तन होने के पश्चात् वह उस स्थिति को पहुँची यह जानने के लिये अब तक ठीक साधन उपलब्ध नहीं हुए

है ।[1] अतएव अभी तो हमको अशोक के समय की लिपि को ही अपनी नागरी लिपि का उत्पत्ति-स्थान मानना चाहिए ।

अशोक के समय की नागरी लिपि भारतवासियों ने ही निर्माण की या उन्होने दूसरों से ग्रहण की इस विषय मे भिन्न-भिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। इस छोटे से लेख में उक्त विवाद ग्रस्त विषय को स्थान देना, मैं उचित नहीं समझता; किन्तु जिनको उक्त विषय में विशेष जानने की इच्छा हो उनको मेरी बनाई हुई 'प्राचीन लिपिमाला' में "पाली[2] लिपि आर्य लोगों ने ही निर्माण की है" इस विषय का लेख तथा 'इण्डियन ऐंटिक्वेरी' में छपा हुआ आर० शामा शास्त्री बी० ए० का देवनागरी लिपि की उत्पत्ति विषयक लेख पढ़ने का मैं आग्रह करता हूँ ।

इस लेख का उद्देश केवल यही बतलाने का है कि अशोक के समय की लिपि में किस प्रकार के परिवर्तन होने के पश्चात् नागरी लिपि वर्तमान स्थिति को पहुँची है ।

अशोक के समय की लिपि का नाम 'ललितविस्तार' में 'ब्राह्मी' लिपि मिलता है, और 'नित्याषोडषिकार्णव' के भाष्य 'सेतुबंध' में

[1]अशोक के समय से पूर्व का अब तक एक ही छोटा सा लेख मिला है जो नैपाल की तराई के विप्रावा नामक स्थान में शाक्य जाति के लोगों के बनवाए हुए एक बौद्ध स्तूप के भीतर रक्खे हुए एक छोटे से पत्थर के पात्र पर एक ही पंक्ति में खुदा है । उसमें नागरी लिपि के केवल १४ अक्षरों के प्राचीन रूप मिलते हैं । उनमें और अशोक के लेखों की लिपि में विशेष अन्तर नहीं है । भेद इतना ही है कि उनमें दीर्घ स्वर चिह्नों का अभाव है ।

[2]पाली = प्राचीन नागरी । यूरोपियन् विद्वानों ने अशोक के लेखों की लिपि का नाम 'पाली' लिपि रक्खा है, परन्तु उसके लिये कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं मिलता ।

भास्करानन्द उसका नाम 'नागर' (नागरी) लिपि होना मानता है क्योंकि वह लिखता है कि "नागर लिपि में 'ए' का रूप त्रिकोण है[1]" जैसा कि अशोक के लेखों में मिलता है।

'नागरी' यह 'देवनागरी' का संक्षिप्त रूप है और इस लिपि का नाम 'देवनागरी' कहलाने का कारण उक्त शामा शास्त्री के मतानुसार यह पाया जाता है कि देवताओं की प्रतिमाओं के बनने के पूर्व उनकी उपासना सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी जो कई प्रकार के त्रिकोणादि यन्त्रों के मध्य में लिखे जाते थे और वे यन्त्र 'देवनगर' कहलाते थे। उन देवनगरों के मध्य लिखे जाने वाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालान्तर में अक्षर माने जाने लगे, इसीसे उनका नाम 'देवनागरी' हुआ।

यह कहना अनुचित न होगा कि अशोक के लेखों की नागरीलिपि वर्तमान नागरी से अधिक सरल थी और गुजराती लिपि की तरह उसके अक्षरों के सिर नहीं बनते थे, परन्तु पीछे के लेखकों के हाथ से उसके अनेक रूपान्तर हुए जिनके मुख्य तीन कारण अनुमान किए जा सकते हैं।

(१) अक्षरों के सिर बनाना।

(२) अक्षरों को सुन्दर बनाने का यत्न करना।

(३) त्वरा से लिखना तथा कलम को उठाए बिना अक्षर को पूरा लिखना।

अशोक के समय की लिपि में किस प्रकार के परिवर्तन होने के पश्चात् वह वर्तमान लिपि की स्थिति को पहुँची है यह बतलाने-वाला एक नक़शा[2] इस लेख के साथ दिया गया है जिसमें प्रथम

[1]कोणत्रयवदुन्नतो लेखा यस्य तत्। नागरलिप्या साम्प्रदायिकैरेकारस्य त्रिकोणाकारतयैव लेखनात्।

[2]यह नक़शा मैंने प्रथम वि० सं० १९५१ (ई० सं० १८९४) में तैयार कर 'प्राचीन लिपिमाला' नामक पुस्तक में छपवाया था (लिपि-

वर्तमान नागरी लिपि का प्रत्येक अक्षर लिखकर उसके आगे = चिह्न रक्खा है, जिसके पीछे बहुधा प्रत्येक अक्षर का अशोक के समय का रूप तथा उसके समस्त रूपान्तर, जो समय-समय पर हुए, दिये गए हैं । इन रूपान्तरो का विवरण नीचे लिखा जाता है—

अ—इसका पहिला रूप गिरनार पर्वत (काठियावाड़ में) के पास की एक चट्टान पर खुदे हुए उपर्युक्त राजा अशोक के लेख से लिया गया है। (बहुधा प्रत्येक अक्षर का पहला रूप अशोक के लेख से ही लिया गया है अतएव आगे पहिले रूप का विवरण नहीं लिखा जायगा।) दूसरा रूपकुशनवंशी राजाओं के लेखों[1] मे जो (ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी के आस पास के हैं)' उच्छकल्प के महाराज शर्वनाथ के ताम्रपत्र में (जो कलचुरि संवत् २१४ = वि० सं० ५२० = ई० सं० ४६३ का है) तथा मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा अपराजित के लेख में (जो वि० स० ७१८ = ई० सं० ६६१ का है) मिलता है। इसमें सिर बनाने का यत्न स्पष्ट पाया जाता है। प्रारम्भ में अक्षरों के सिर बहुत

पत्र ४१ वें में)। कुछ समय पीछे इसको सुधार कर एक बड़े शक़्शे के रूप में तैयार कर 'नागरी-प्रचारिणी सभा, बनारस' को भेंट किया जो अब तक उक्त सभा के पुस्तकालय में रक्खा हुआ है। इसी की हाथ से तैयार की हुई नक़ल बनारस के सिद्धेश्वर प्रेस में छपी और 'सरस्वती' की दूसरी जिल्द में इसकी फोटो से तैयार की हुई कापी बड़ी उत्तमता से छपी। जिसके पीछे यह एक बार फिर 'सरस्वती' में छपा और 'लिपि-बोध' नामक पुस्तक के कर्त्ता ने भी अपनी पुस्तक में इसकी अविकल नक़ल छापी, परन्तु इन पिछले दोनों प्रकाशकों ने इसके कर्त्ता का नाम लिखने का श्रम नहीं किया। जो चित्र इस लेख के साथ दिया गया है वह सरस्वती में छपे प्लेट से लिया गया है।

[1]कुशनवंशी (तुरुष्क-तुर्क) राजाओं के प्राचीन नागरी लिपि के लेख विशेष कर मथुरा तथा उसके आसपास के प्रदेश से मिले हैं।

छोटे बनते थे परन्तु पीछे से बहुधा सारे अक्षर पर बनने लगे। प्रारम्भ में यह यत्न भी अक्षर को सुन्दर बनाने के उद्देश्य से किया गया हो ऐसा अनुमान होता है। तीसरा रूप दूसरे रूप से मिलता हुआ है, अंतर केवल इतना ही है कि दूसरे रूप में नीचे के बायीं ओर के हिस्से में सुन्दरता की दृष्टि से जो घुमाव डाला गया है उसका सम्बन्ध मूल अक्षर से तोड़ दिया है। चौथे और पाँचवे रूप में 'अ' की दाहिनी तरफ़ की खड़ी लकीर को सुन्दर बनाने का यत्न पाया जाता है, जिससे अक्षर की आकृति में विशेष अन्तर हो गया है। ये रूप० ई० की नवीं शताब्दी के आस पास से लगाकर तेरहवीं शताब्दी तक के अनेक लेखों तथा हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं। कई जैन लेखक तो अब तक हर एक खड़ी लकीर के अन्त को सुन्दरता के विचार से हलंत के चिह्न का सा दे देते हैं।

अ—'अ' का यह रूप अब बहुधा दक्षिण में लिखा जाता है और उपर लिखे हुए 'अ' के तीसरे रूप को उसकी वास्तविक स्थिति में रहने देने अर्थात् उसमें सुन्दरता लाने का यत्न न करने से ही इसकी उत्पत्ति हुई है। अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा हस्तलिखित पुस्तकों में इसके चौथे और पाँचवे रूप मिलते हैं (देखो 'प्राचीन लिपिमाला', लिपिपत्र ५ वा, १२ वा, १३ वा १६ वा १७ वां और १८ वां)।

इ—का दूसरा रूप गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त के इलाहाबांद के लेख में (जो ई० स० की चौथी शताब्दी का है) तथा स्कन्दगुप्त के समय के कमाऊँ के लेख में (जो गुप्त संवत् १४१ = वि० संवत् ५१७ = ई० स० ४६० का है) मिलता है। जिसमे 'इ' की बिन्दियो पर सिर बनाने का यत्न किया गया है। चौथा रूप हैहय (कलचुरी) वंशी राजा जाजल्ल देव के चेदी संवत् ८६६ (वि० स० ११७१ = ई० सं० १११४) के लेख में (प्राचीन लिपिमाला लिपिपत्र १६ वा) तथा कई हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों में पाया जाता है। पाँचवाँ रूप १३ वीं शताब्दी के आस पास के शिला लेखों तथा पुस्तकों में मिलता है और वर्तमान 'इ'

से बहुत कुछ मिलता हुआ है।

उ—के दूसरे रूप में सिर बना है व नीचे की आड़ी लकीर के अन्तिम भाग को सुन्दरता के विचार से कुछ नीचे को झुकाया है। कुशन-वंशी राजाओं के लेखों में यह रूप मिलता है। उक्त झुकाव को बढ़ा देने से चौथे रूप की सृष्टि हुई है जो अनेक लेखों में मिलता है। (प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र ५ वां, १२ वां और १३ वां)

ए—के दूसरे रूप में त्रिकोण को उलटा दिया है जिस से ऊपर की तरफ़ सिर सा दीखता है। यह रूप उपर्युक्त समुद्रगुप्त के लेख में तथा कई अन्य लेखादि में मिलता है। (प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र ३ रा, १२ वां और १३ वां)। चौथे रूप में शुद्ध त्रिकोण की शक्ल पलट कर वर्तमान 'रा' का प्रादुर्भाव दीख पड़ता है। यह रूप मदसौर (मालवे) में से मिले हुए राजा यशोधर्म के लेख में (जो मालव संवत् ५८९ = ई० सं० ५३२ का है), मारवाड़ के पड़िहार राजा कक्कुक के समय में वि० सं० ९१८ (ई० स० ८६१) के लेख में तथा कई दूसरे लेखों में मिलता है। (प्रा० लि० ५ वां और १६ वां) पाँचवां रूप जो वर्तमान "ए" से बहुत ही मिलता हुआ है; राठौड़ राजा गोविन्दराज (तीसरे) के शक संवत् ७३० (वि० सं० ८६५ = ई० स० ८०७) के, परमार राजा वाक्पति राज (मुंज) के वि० सं० १०३१ (ई० सं० ९०४ के, और कलचुरी राजा कर्णदेव के कलचुरी सं० ७९३ (वि० सं० १०९९ = ई० सं० १०४२) के ताम्रपत्रों में तथा कई अन्य शिलालेखों व पुस्तकों में मिलता है।

इस लेख के साथ के नक्शे में दर्ज किये हुए बहुधा प्रत्येक अक्षर के भिन्न-भिन्न रूप अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा पुस्तकों में मिलते हैं। यदि उन सब के नाम समय आदि का उल्लेख किया जाय तो एक छोटी सी पुस्तक बन जाय इसलिए आगे बहुधा उनका संक्षेप से उल्लेख किया जायगा और 'प्राचीन लिपिमाला', के लिपिपत्र का नम्बर दे दिया जायगा, जिसको देखने से उसके समय आदि का वृत्तान्त मालूम हो

जायगा।

क—के दूसरे रूप मे सिर बनाने का यत्न पाया जाता है एवं बीच की आड़ी लकीर को झुका दिया है। (प्रा० लि० ३ रा, ५ वाँ और ६ वा) तीसरे रूप में बीच की लकीर का झुकाव बढ़ा दिया है। यह रूप उपर्युक्त कलचुरी राजा कर्णदेव के ताम्रपत्र में मिलता है। चौथा रूप अनेक लेखो मे पाया जाता है (प्रा० लि० १३ वा, १६वा, १७ वा, १८ वा, १६ वा)।

ख—का दूसरा रूप कुशनवशी राजाओं के लेखों में तथा गिरनार पर्वत के पास के उपर्युक्त चट्टान पर खुदे हुए क्षत्रवंश के राजा रुद्रदामा के लेख में जो ई० स० की दूसरी शताब्दी का है। (प्रा० लि० २ रा) मिलता है। तीसरे रूप में सिर बनाने के कारण अक्षर के दो खड हो गए हैं, जिनमें से पहले अर्थात् खड़ी लकीर के नीचे के हिस्से को सुन्दर बनाने का यत्न किया गया है। इस प्रकार उक्त अक्षर के 'र' और 'व' ये दो रूप बन गये (चौथे रूप मे स्पष्ट है) जिनको मिलाकर लिखने से ही 'ख' बनता है (प्रा० लि० १२, १३, १६)।

ग—'ख' की नाई 'ग' के रूपान्तरों का मुख्य कारण सिर बनाना है। दूसरे रूप में ऊपर के कोण के स्थान में वक्रता पायी जाती है। यह रूप मथुरा के क्षत्रप राजा सोडास, और प्रसिद्ध क्षत्रप राजा नहपान के जवाई शक उषवदास के लेखों मे तथा कई दूसरे लेखों में भी मिलता है। इसी रूप के ऊपर सिर बनाने तथा पहिली खड़ी लकीर को ज़रा बाईं तरफ़ मोड़ देने से तीसरे रूप की उत्पत्ति हुई है जो वर्तमान 'ग' से मिलता हुआ ही है। (प्रा० लि० ६, १२, १३, १६ आदि)।

घ—के दूसरे रूप में सिर बनाया गया है और दाहिनी ओर की दोनों ऊर्ध्व रेखाओं की ऊँचाई बढ़ाई गई है। यह रूप उपर्युक्त मालवा के राजा यशोधर्म के मन्दसौर के लेख में मिलता है (प्रा० लि० ५)। इसी का सिर पूरा बनाने तथा त्वरा के कारण अक्षर को कुछ टेढ़ा लिखने से तीसरा रूप बना है जो वर्तमान 'घ' से मिलता हुआ है। चौथा

रूप भी उसी से मिलता हुआ ही है।

ङ—यह अक्षर अशोक के किसी लेख में नहीं मिलता। यह पहिले पहिले कुशनवंशियों के लेखों में संयुक्ताक्षरों में पाया जाता है। इसका पहिला रूप उपर्युक्त समुद्रगुप्त के लेख के एक संयुक्ताक्षर से लिया गया है। (प्रा० लि० ३) पीछे से इसके नीचे के हिस्से की गोलाई बढ़ती गयी और इसकी आकृति 'ड' से मिलने लगी जिससे इसको उससे भिन्न बनाने के लिये इसके सिर के अंत में गाँठ लगाई जाने लगी देखो रूप चौथा) जो कहीं चतुरस्र कहीं गोल और कहीं त्रिकोण सी मिलती है। (प्रा० लि० ६, १३, २१, २३, २४) इस गाँठ का प्रादुर्भाव ई० स० की आठवीं शताब्दी के आसपास होना पाया जाता है। पीछे से यह बिंदी के रूप में अक्षर के मध्य भाग में लगाई जाने लगी।

च—के दूसरे हिस्से में सिर के अतिरिक्त बाईं ओर के नीचे के हिस्से पर नोक सी बनी है। तीसरे रूप में वर्तमान 'च' की आकृति कुछ दीख पड़ती है जो चौथे रूप में पूरी तरह बन गयी है (प्रा० लि० २, ४, ८, ६, १६, १७, १६, २०)।

[बहुधा दूसरे या तीसरे रूप से प्रत्येक अक्षर का सिर बना है। अतएव अब सिर का उल्लेख जहां कहीं विशेष आवश्यकता होगी वहीं किया जायगा।]

छ—के दूसरे में खड़ी लकीर वृत्त को पार कर बाहर निकल गयी है (प्रा० लि० १६)। तीसरा रूप कन्नौज के गहरवार (राठौर) वंशी प्रसिद्ध राजा जयचंद के वि० सं० १२३२ (ई० सं० ११७५) के, और मालवा के परमारवंशी महाकुमार उदयवर्मा के वि० सं० १२५६ (ई० सं० १२००) के ताम्रपत्र में मिलता है।

ज—के दूसरे रूप में नीचे के हिस्से को कुछ आगे बढ़ाकर सुन्दर बनाने के लिये कुछ नीचे झुकाया है (प्रा० लि० ५, ९) उसी हिस्से को बाईं ओर घुमाने से तीसरा रूप बना है (प्रा० लि० ११, १२)। चौथा रूप वर्तमान 'ज' से मिलता हुआ ही है (प्रा० लि० १३), और

पाँचवाँ रूप तो इस समय तक कहीं-कहीं लिखा जाता है।

म—'भ' अक्षर प्राचीन लेखादि में बहुत ही कम मिलता है। इसका दूसरा रूप ब्राह्मण राजा शिवगण के कनसवा (कोटा से कुछ दूर) के वि० सं० ७६५ (ई० स० ७३८) के लेख में और तीसरा राठौर राजा गोविंदराज (तीसरे) से शक सं० ७३० वि० सं० ८६४ = ई० सं० ८०७) के ताम्रपत्र में मिलता है। चौथा रूप 'म' (भ) से मिलता हुआ है। 'भ' का यह रूप कितनी ही छपी हुई जैन पुस्तकों में मिलता है और राजपूताने में बहुधा यही रूप लिखा जाता है।

भ—'भ' का यह रूप विशेष कर दक्षिण में प्रचलित है। इसके तीन रूप ऊपर 'म' के पहिले दो रूपों के सदृश हैं। तीसरे रूप के नीचे के हिस्से में गाँठ लगाने से चौथा रूप बना है जो प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में कहीं-कहीं मिलता है।

वर्तमान नागरी लिपि में जो 'भ' अक्षर लिखा जाता है उसकी उत्पत्ति कैसे हुई यह पाया नहीं जाता, क्योंकि प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में कहीं उसका प्रयोग नहीं मिलता।

य—यह वर्ण प्राकृत लेखों में मिलता है और संस्कृत लेखों में बहुधा संयुक्ताक्षरों में ही पाया जाता है। इसका दूसरा रूप उपर्युक्त मेवाड़ के गुहिल राजा अपराजित के समय के वि० सं० ७१८ (ई० सं० ६६१) के लेख में (प्रा० लि० ११) और तीसरा कुमारगुप्त के समय के मन्दसौर के लेख में (प्रा० लि० ४) मिलता है, जो वि० सं० ५२६ (ई० स० ४७२) का है। तीसरे रूप की दाहिनी ओर की खड़ी लकीर को ऊपर की तरफ़ बढ़ाने से चौथा रूप बना है, जो वर्तमान 'य' से मिलता हुआ ही है।

ट—का दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ है और सिर बनाने के कारण ऊपर के हिस्से में कुछ परिवर्तन मालूम होता है (प्रा० लि० ३, ४, ७, ८)। तीसरा व चौथा रूप वर्तमान 'ट' से मिलता है (प्रा० लि० १२)।

ठ—का दूसरा रूप केवल सिर बनाये जाने के कारण बना है। बाकी इसमें और पहिले रूप में कोई भेद नहीं है (प्रा० लि० ७)। तीसरे रूप में सिर तथा नीचे के वृत्ताकार हिस्से के बीच में छोटी सी खड़ी लकीर रहने के कारण ठीक वर्तमान 'ठ' बन गया है। (प्रा० लि० १३, १७, १६)।

म—'ड' का यह रूप जैन पुस्तकों में मिलता है और राजपूताने में अब तक 'ड' बहुधा ऐसा ही (म) लिखा जाता है। इसके दूसरे रूप मे नीचे का हिस्सा कुछ दाहिनी ओर बढ़ाया गया है, जिसका कारण त्वरा से लिखना अनुमान किया जाता है। इससे मिलता हुआ रूप उड़ीसे की हाथी गुफा (कटक से कुछ दूर) में खुदे हुए जैन राजा खारवेल के लेख में पाया जाता है, जो ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के करीब का है। दूसरे रूप को सुन्दर बनाने या त्वरा से लिखने के कारण तीसरा व चौथा रूप बना है। (प्रा० लि० ८)। पाँचवां रूप वर्तमान 'भ' (ड) से बहुत कुछ मिलता हुआ है (प्रा० लि० ११)।

ड—इसके पहले चार रूप तो ऊपर के 'म' के समान ही हैं। पाँचवे रूप में मध्य का घुमाव बढ़ा देने के कारण उसकी आकृति वर्तमान 'ड' के सदृश बन गई है (प्रा० लि० १८, १६)।

ढ—वर्तमान नागरी लिपि की वर्णमाला में केवल एक 'ढ' अक्षर ही अपनी प्राचीन स्थिति में बना रहा है। केवल उस पर सिर बढ़ाया गया है।

ण—का दूसरा तथा तीसरा रूप कुशनवंशियों के लेखो में मिलता है। चौथे से छठे तक के रूप अनेक लेखादि में पाये जाते हैं (प्रा० लि० ३, ५, ९, १०, ११, १२, १३, १६, १७, १८)। छठे रूप में सिर बढ़ा देने से वर्तमान 'ण' बना है।

ण—'ण' का यह रूप दक्षिण में प्रचलित है। इसके भेद ऊपर के 'ण' के अनुसार ही हैं। इसके चौथे रूप के सिर जोड़ देने से यह रूप (ण) बना है।

त—का दूसरा रूप वर्तमान "त" से मिलता हुआ है (प्रा० लि० ११)।

ध—का दूसरा रूप उपर्युक्त समुद्रगुप्त के लेख में मिलता है (प्रा० लि० ३) तीसरे से पाँचवें तक के रूप अनेक लेखो में पाये जाते हैं (प्रा० लि० ४, ५, ६, १२, १३, १६, १८, १६, २०)।

द—का दूसरा रूप अशोक के जोगड़ (मद्रास हाते के गंजाम ज़िले में) के लेख में तथा पभोसा (=प्रभास, इलाहाबाद से ३२ मील के अन्तर पर यमुना तट पर) के लेखों में (जो ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के हैं) मिलता है। तीसरा कुशनवंशियो के लेखो में और चौथा अनेक लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० ३, ६, १३)। पाँचवां रूप वर्तमान 'द' से मिलता हुआ है।

ध—का दूसरा रूप कन्नौज के पड़िहार राजा भोजदेव के ग्वालिअर के लेख में (जो वि० सं० ९३३ = ई० स० ८७६ का है) है तथा देवलगाँव (पीलीभीत से २० मील पर) की प्रशस्ति में (जो वि० सं० १०४६ = ई० स० ६६२ की है) पाया जाता है। तीसरा रूप कन्नौज के गहरवार (राठोड़ राजा जयचन्द के वि० सं० १२३२ = ई० स० ११७५ के ताम्रपत्र में मिलता है। चौथा रूप वर्तमान "ध" से बहुत कुछ मिलता हुआ है (प्रा० लि० २०)।

न—का दूसरा रूप उपर्युक्त क्षत्रप राजा रुद्रदामा के लेख मे (प्रा० लि० २) और तीसरा राजानक लक्ष्मणचन्द्र के समय वैद्यनाथ के लेख में (शक सं० ७२६ = वि० सं० ८६१ = ई० स० ८०४ का है) मिलता है। चौथा तीसरे का ही रूपान्तर है।

प—का दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है। तीसरा अनेक लेख में पाया जाता है (प्रा० लि० ३, ११, १२, १७, १८)।

फ—का दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है। तीसरा रूप समुद्र गुप्त के लेख में पाया जाता है। चौथा रूप तीसरे को त्वरा से लिखने के कारण उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है, और अनेक प्राचीन

हस्तलिखित पुस्तकों में मिलता है। पाँचवां चौथे से मिलता हुआ है और उसी से छठा रूप बना है।

ब—का दूसरा रूप उपर्युक्त राजा यशोधर्म के लेख में (प्रा० लि० ५) तथा कई अन्य लेखों में मिलता है। (प्रा० लि० ११, १३) तीसरा रूप "प" से मिलता हुआ है (प्रा० लि० १८), कहीं कहीं "व" के समान भी पाया जाता है। इसको उक्त अक्षरों "प" और "व" से भिन्न बनाने के लिये इसके बीच में एक बिन्दी लगाने लगे, जिससे चौथा रूप बना। पाँचवा रूप चौथे से मिलता हुआ है और गुजराती के सोलंकी राजा भीमदेव के वि० सं० १०८६ (ई० स० १०२६) के ताम्रपत्र में मिलता है।

भ—का दूसरा रूप कुशनवंशियों के लेखों में और तीसरा गुप्तवंश के राजा स्कंदगुप्त के इन्दौर से मिले हुए ताम्रपत्र में जो गुप्त सं० १४६ (वि० स० ५२२=ई० स० ४६५) का है, मिलता है। चौथा रूप तीसरे से मिलता हुआ ही है।

म—के पहिले तीन रूप एक दूसरे से मिलते हुए ही हैं और चौथा रूप वर्तमान "म" के सदृश सा ही है।

य—के पहिले दो रूप अशोक के लेखों में मिलते हैं। दूसरे को कलम को उठाये बिना लिखने से तीसरा रूप बना है और चौथा उसी का भेद है जो वर्तमान "य" के सदृश है।

र—का दूसरा रूप पहिले रूप की खड़ी लकीर के अन्त को सुन्दरता के विचार से दाहिनी ओर कुछ नीचे की तरफ़ झुकाने से बना है। यह रूप बौद्ध श्रमण महानामन् के गुप्त सं० २६६ (वि० सं० ६४५=ई० स० ५८८) के लेख में पाया जाता है। तीसरा रूप वर्तमान "र" से मिलता हुआ है।

ल—का दूसरा रूप हूणवंशी राजा तोरमाण के लेख में, जो ई० स० ५०० के क़रीब का है, मिलता है। तीसरा रूप कई लेखों में पाया जाता है। (प्रा० लि० ६, ११, १२)। तीसरे को सुन्दर बनाने का

यत्न करने से चौथे रूप की उत्पत्ति हुई है और पाँचवां रूप वर्तमान "ल" से मिलता हुआ है।

व—के पहिले रूप को बिना कलम को उठाये लिखने से दूसरा रूप बना है (प्रा० लि० ४) और उसके नीचे के हिस्से में सुन्दरता लाने का यत्न करने से तीसरे रूप की सृष्टि हुई (प्रा० लि० ११, १२, १३, १६)।

श—का दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है। तीसरा व चौथा ये दोनों दूसरे के ही रूपान्तर हैं। (प्रा० लि० ३) पाँचवां रूप कई लेखों में मिलता है (प्रा० लि० १३, १५)। छठा रूप पाँचवें का ही रूपान्तर है।

ष—यह अक्षर अशोक के लेखों में नहीं मिलता। इसका पहिला रूप घोसुंडी (मेवाड़ में) के शिलालेख से उद्धृत किया गया है, जो (लेख) ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी का है। दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है और तीसरा कई लेखों में मिलता है (प्रा० लि० १६, १७, १८, १६)।

स—का दूसरा रूप पहले के सदृश ही है। तीसरा समुद्रगुप्त के लेखों में मिलता है (प्रा० लि० ३०)। और चौथा कई लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० ५, ६, १२, १३)।

ह—का दूसरा रूप पहले के समान ही है। तीसरा उच्छकल्प के महाराज शर्वनाथ के उपर्युक्त वि० सं० ५२० (ई० स० ४६३) के ताम्रपत्र से उद्धृत किया गया है। और चौथा अनेक लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० ४, ५, ६, १३, १६)।

ळ—वेदों के अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य में इस अक्षर का प्रयोग नहीं मिलता, परन्तु संस्कृत शिलालेखों में इसका प्रयोग 'ल' या 'ड' के स्थानों में मिल जाता है। दक्षिण के शिलालेखों में यह विशेष रूप से मिलता है। गुजरात से लगाकर कन्याकुमारी तक यह अक्षर अब तक बोला और लिखा जाता है। राजपूताने में भी यह बोला तो जाता है

किन्तु इसके स्थान में 'ल' लिखा जाता है (जो सर्वथा अशुद्ध है) ।

इसका पहिला रूप उपर्युक्त रुद्रनामा के लेख से उद्धृत किया गया है (प्रा० लि० २) । दूसरा रूप दक्षिण के सोलंकियों के ई० स० की नवीं शताब्दी से लगाकर ११ वीं शताब्दी तक के लेखों में पाया जाता है तीसरा रूप दूसरे से मिलता हुआ ही है ।

क्ष—यह वर्ण नहीं किन्तु संयुक्त वर्ण है, जो 'क' और 'ष' के मिलने से बना है । ई० स० की दसवीं शताब्दी तक के शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों और पुस्तकों में इसके दोनो वर्ण अन्य संयुक्ताक्षरों के समान मिलाकर लिखे जाते थे । परन्तु पीछे के लेखकों ने सुन्दरता की धुन में इसका रूप ऐसा विलक्षण बना दिया कि उक्त वर्णों का कहीं लेशमात्र भी बचने न पाया और एक विलक्षण ही रूप बन गया, जिससे कई लेखकों ने इसको वर्णमाला में स्थान दिया, जैसे कि 'त्र' को अब दिया जाता है । इसका पहिला रूप क्षत्रप राजा सोडास के मथुरा के लेख से उद्धृत किया गया है । दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ है और तीसरा हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों में मिल जाता है । अन्य दो रूप तीसरे के ही भेद हैं ।

ज्ञ—यह भी वर्ण नहीं किन्तु संयुक्त वर्ण है जो 'ज' और 'ञ' के मिलने से बना है । ऊपर 'क्ष' के विषय में जो लिखा गया है वह इसके लिए भी चरितार्थ होता है । इसका पहिला रूप रुद्रदामा के लेख में मिलता है (प्रा० लि० २) । दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है । अन्तिम दो रूप हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं ।

व्यंजनो के साथ जुड़ने वाले स्वरचिह्नो की उत्पत्ति कैसे हुई यह इस लेख के साथ के नक़शे में स्पष्ट बतलाया गया है ।

देवनागरी लिपि

[पंडित केशवदेव मिश्र]

सज्जनों ! मैं पहले भारतवर्ष की प्रसिद्ध प्रसिद्ध लिपियों पर विचार करना चाहता हूँ। दक्षिणी भाषाओं और उनकी लिपियो का देवनागरी अक्षरों से बहुत कम सम्बन्ध है; इसलिए मैं आज के व्याख्यान में उनका वर्णन नहीं करूँगा। भारतवर्ष की शेष पाँच ही ऐसी भाषाएँ मिलती हैं जिनकी लिपियों पर विचार करना, उनकी उत्पत्ति पर ध्यान देना और उनकी रचना पर ख्याल करना अत्यावश्यक है। आज मैं इस व्याख्यान द्वारा बतलाऊँगा कि किस प्रकार से विकास-सिद्धान्तानुसार देवनागरी अक्षर वर्तमान अवस्था में आये। इन अक्षरो के सहारे कैसे-कैसे और कब कब अन्य लिपियों का प्रचार हुआ और उन लिपियों के अक्षरों से कैसे ज्ञात होता है कि उनका मूलाधार भी यही देवनागरी अक्षर थे। जिन पाँच भाषाओं का ऊपर मैंने संकेत किया है वे बंगाली, मरहठी, गुजराती हिन्दी और पंजाबी हैं। उर्दू का सम्बन्ध फ़ारसी तथा अर्बी से है, इसलिये मैं उस लिपि पर भी कुछ विचार न करूँगा। मरहठी और हिन्दी-भाषा की लिपियो में कुछ भी अन्तर नहीं इसलिये लिपियों की गणना में मरहठी लिपि पर भी कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं। इस समय हमारे सम्मुख दो प्रश्न उपस्थित हैं। पहला यह कि देवनागरी अक्षर कब से प्रचलित हुए और कैसे कैसे उनमें रूपान्तर होता गया; दूसरे यह कि इन चार प्रकार की लिपियों का कैसे परस्पर सम्बन्ध है। ये दोनो प्रश्न अत्यावश्यक है। मैं प्रथम दूसरे प्रश्न पर विचार करूँगा और पहिले पाँच चित्रों में इन चारो लिपियों के व्यञ्जनों पर ध्यान दिलाऊँगा। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इन सब लिपियों की वर्णमाला समान है। गुरुमुखी में ज्ञ और क्ष नही मिलते, जिसका कारण उच्चारण की असुविधा जानना चाहिये। यदि हम दीर्घ

दृष्टि से इन अक्षरों की रचना पर ध्यान देंगे तो हमें स्पष्ट रीति से ज्ञात हो जायगा कि किसी भाषा की लिपि में कौन अक्षर किस शताब्दी में लिया गया है।

चित्र नं० १ में लिपियों का क्रम (१) देवनागरी (२) गुरुमुखी (३) बंगाली (४) गुजराती है। इनमें कवर्ग का विधान है। ककार प्रायः चारों लिपियों के मिलते हैं। हाँ, रूप कुछ अवश्य बदल दिये गये हैं और भिन्न लिपि की प्रसिद्ध के लिये किसी अंश तक यह आवश्यक भी था। घकार में देवनागरी, बँगला और गुजराती अक्षर मिलते हैं, परन्तु गुरुमुखी के घकार में अन्तर है। इस अन्तर के दो ही कारण हो सकते हैं, या तो देवनागरी अक्षरों का घकार उस समय ऐसा न था जब गुरुमुखी लिपि के प्रवर्तकों ने उसका अनुकरण किया या लिपि के सचालको ने जान बूझकर अपनी सुगमता इसकी रचना के परिवर्तन में समझी। गकार चारों लिपियो का मिलता है, ङकार मे भी कुछ अधिक अन्तर नहीं। एक ङकार के परिज्ञान में दूसरी लिपियों का ङकार का सहसा बोध हो सकता है।

चित्र नं० २ में चकार बँगला का उलटा है किन्तु रूप वही है। गुजराती का जकार भिन्न है। झकार जकार में बँगला अक्षर देवनागरी लिपि के भिन्न कर दिये गये हैं। गुरुमुखी में झकार और जकार में भिन्न भिन्न रूप बतलाने के लिये झकार का उल्टा जकार कर दिया है। टकार, ठकार, डकार चारों लिपियों में समान ही हैं।

चित्र न० ३ ढकार चारों लिपियो का मिलता जुलता है। बँगला में णकार भिन्न है, कारण यह है कि बँगला अक्षरों के 'ण' और 'न' में कुछ अधिक अन्तर नहीं। सर्वसाधारण तो इसके उच्चारण में कुछ भेद ही नहीं करते, हाँ, लिपि में और भी प्रमाणिक ग्रन्थों में नकार और णकार का अन्तर दिखलाया जाता है। गुरुमुखी और बँगला अक्षरों के तकारों में अधिक अन्तर जान पड़ता है मगर रूप का अनुकरण अवश्य ही किया गया है। थकार में गुरुमुखी अक्षरों में कुछ अन्तर है, इसके

परिवर्तन का कारण गुरुमुखी का खकार प्रतीत होता है, परन्तु ध्यान-पूर्वक देखने से वह अक्षर भी मिट जाता है। दकार सब के एक ही से हैं। धकार गुरुमुखी का न्यारा है। इसका कारण नागरी अक्षरों के परिवर्तन स्थान से जाना जा सकता है। नकार समान ही हैं। केवल गुरुमुखी में रूप कुछ बदल दिया है।

चित्र नं० ४ में पाकर बँगला लिपि का भिन्न प्रतीत होता है, परन्तु ध्यानपूर्वक देखने के वह अन्तर भी मिट जाता है। केवल लिपि की विलक्षणता ही मूल कारण है। फकार में केवल गुरुमुखी लिपि वालों ने अन्तर डाल दिया है। बकार भकार भी गुरुमुखी वालों ने मिल जाने के भय से भिन्न-भिन्न निर्माण किए हैं। गुजराती बकार का घेरा विलक्षण है। इसी से अन्तर बढ़ गया है। मकार, यकार सब के समान हैं। रेफ में गुरुमुखी और बँगला अक्षर नहीं मिलते। देवनागरी अक्षरों के वर्तमान अवस्था में आने से पूर्व रेफ बहुत रूपान्तरों को धारण कर चुका है। हाँ, जिस सोलहवीं शताब्दी में गुरुमुखी और बँगला भाषाओं के भाषियों ने यह अक्षर देवनागरी लिपि से अपनी लिपियो में लिया उस समय का रेफ उनसे अधिक मिलता जुलता था। जहां उन लिपियों के रेफ वहीं रहे, नागरी के रेफ में कुछ और परिवर्तन हो गया। गुजराती लिपि के अक्षरों की अधिक समानता का कारण यह है कि यह लिपि इन लिपियों में सब से पीछे प्रचलित हुई।

चित्र नं० ५ लकार सब के समान हैं। वकार गुरुमुखी का भिन्न है। गुरुमुखी में शकार, षकार का अन्तर एक विन्दु डाल कर दिखलाया है। शकार के रूप को हटा देने का कारण अधिकतर रूपों के परस्पर मिल जाने का भय था। षकार चारों लिपियों में समान है। सकार भी मिलता है। क्षकार और ज्ञकार गुरुमुखी में नहीं मिलते! गुजराती में संयुक्तअक्षरों से बना लिये गये हैं। बँगला (ज, ञ) को मिलाकर ज्ञ का रूप बना लिया है। मेरा विश्वास है कि यदि ध्यानपूर्वक हम विचार करें तो हमें इन चार प्रकार की लिपियों का परस्पर घनिष्ठ

सम्बन्ध भली भाँति ज्ञात हो सकता है। इतिहास द्वारा हम बतला सकते हैं कि १३ वीं सदी में बँगला, सोलहवीं सदी में गुरुमुखी और अनुमानतः सत्रहवीं सदी में गुजराती लिपि का प्रचार हुआ। दसवीं सदी में इन तीनों लिपियों का पता न था, जब कि देवनागरी लिपि का सम्बन्ध आज से अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व तक के अक्षरों से मिलता है; इसलिये जहां हम चारो लिपियों को परस्पर मिला जुला पाते हैं वहां हम यह भी निर्भय होकर अनुमान से कह सकते हैं कि इन लिपियों की रचना देवनागरी अक्षरों के आधार पर हुई है। अब मैं स्वरों द्वारा बताऊंगा कि उनमें कितना सम्मिलन है।

चित्र नं० ६ में इन चारो लिपियों का परस्पर इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि प्रायः सब दीर्घ समान हैं। अकार चारो लिपियों का मिलता जुलता है। बँगला लिपि में एक रेखा कम कर दी गई है। गुरुमुखी के अकार में रूप को रखते हुए भी किंचित् अन्तर दिखलाया गया है। इकार में भी उसी नियम का अनुकरण किया गया है। गुजराती में उलटा रूप दिखलाया है। गुरुमुखी में नीचे की रेखा ऊपर जोड़कर भेद बना दिया है। बँगला के इकार को सुगम बनाने के लिये एक भाग हटा दिया है। उकार चारो के समान है। ऋकार में भी कुछ अन्तर नहीं। यही हाल 'ऌ' का है। एकार में बंगाली लिपि विपरीत है। गुजराती अक्षरों में अकार पर एकार की मात्रा बढ़ाकर काम ले लिया है। इस चित्र द्वारा भी स्पष्ट है कि चारों लिपियों की वर्णमाला एक सी है और देवनागरी अक्षरों में कहीं कहीं परिवर्तन कर स्वरों को बना लिया है।

जैसा कि चित्र नं० ७ में स्वरों का पारस्परिक सम्बन्ध बतलाया है; ठीक उसी प्रकार से मात्राओं में भी सम्बन्ध ज्ञात होगा। यहाँ मात्राओं को भी उनके ह्रस्व रूपों में लिया गया है। अकार, इकार की मात्राओं में लेश भी अन्तर नहीं। हाँ, लेख-प्रणाली में बँगला और गुजराती अक्षरों में सौन्दर्य के लिये रेखा बढ़ा दी गई है। उकार में बँगला लिपि के संचालकों ने अन्तर दिखलाया है और ह्रस्व उकार को दीर्घ उकार

का रूप दे दिया है। ऊकार में बँगला अक्षर फिर भिन्न है। गुरुमुखी लिपि में नियम वही है; हाँ, रेखा को कम कर दिया है। ओकार में देवनागरी और गुजराती समान है। गुरुमुखी में ऊपर की रेखा से ही काम ले लिया है। बँगला में उसका रूप विभक्त करके दिखलाया है। अनुस्वार सब के समान हैं। चित्र नं० ७ से भी स्पष्ट है कि यह चारों लिपिया एक ही नियम पर चलाई गयी हैं।

सज्जनो! यहा तक तो मैने व्याख्यान के पहिले भाग को समाप्त किया है। इन चित्रो मे मुझे इतना ही सिद्ध करना था कि बँगला, गुजराती तथा गुरुमुखी लिपियो को मूलाधार देवनागरी अक्षर हैं। व्यंजनों, स्वरों, मात्राओ और हिस्सो में इन तीनों लिपियों के संचालकों ने देवनागरी अक्षरो का समय समय पर अनुकरण किया है; मैंने इस विषय पर अभी बहुत अधिक विचार नहीं किया और न मेरे पास ऐतिहासिक सामग्री है; पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि कुछ काल के पश्चात् हमें पता लग जायगा कि किस शताब्दी मे किस देश वालो ने अपनी लिपि देवनागरी लिपि में से बनाई है। देवनागरी अक्षरो की रचना मे परिवर्तन होता रहा है और आगे के पाँच चित्रों द्वारा मैं बतलाऊँगा कि महाराज अशोक के समय से आज तक इसी लिपि के अक्षरों मे क्या क्या परिवर्तन हुए। भारतवर्ष मे जो सब से पुरानी किताबे मिली हैं, अथवा जितने खुतबे मिले हैं उसकी वर्णमाला से ये पाँच चित्र लिये गये हैं। उनके आदिरूप और विकास सिद्धान्तानुसार उनके रूपान्तरों का दिग्दर्शन मात्र इन चित्रो में कराया गया है।

चित्र नं० ८ में ग, घ, च और छ ये चार अक्षर दिखलाये गए हैं, आदि रूप वे हैं जो महाराज अशोक के समय में थे, और अन्तिम रूप वे हैं जो आजकल हम लिखते हैं आप को यदि दूसरे चित्र के बँगला चकार का ध्यान हो तो आप तत्काल ही पहिचान लेंगे कि इस चित्र के चकार का द्वितीय रूप ही बँगला का चकार है, अर्थात् बँगला लिपि उस समय निर्माण की गयी थी कि जिस समय देवनागरी अक्षरो

का चकार ऐसा था। मैंने यहां केवल चार चार, पाँच पाँच रूप दिखलाये हैं, वस्तुतः इससे कहीं अधिक हैं। जिन्हें इस विषय में अधिक परिज्ञान की उत्कण्ठा हो वे श्रीयुत गौरीशंकर ओझा का बनाया नक़्शा देखें। अस्तु शताब्दियों के परिवर्तन के पश्चात् आज देवनागरी लिपि का रूप सुन्दरता को प्राप्त हुआ है। पुरानी लिपि के अक्षर भद्दे और बेडौल थे।

नवें चित्र में ज, झ, ट, ठ के चार अक्षर दिखलाये हैं। चारों लिपियों में आज भी टकार, ठकार, प्रायः समान ही हैं और प्राचीन काल की लिपियों से इनका पारस्परिक सम्बन्ध भी अधिक है, मगर जकार और झकार में कहीं कहीं अन्तर है। बँगला झकार को समझने के लिये, जिसे दूसरे चित्र मे दिखलाया था, इस नवें चित्र के ६ झकारों में से चौथे पर ध्यान देना उचित होगा। इसकी एक नीचे की रेखा को ऊपर ले जाकर सुन्दर बनाने के भाव से बदल दिया है। बँगला लिपि का जकार भी सातों जकार के रूपों मे से चौथा जकार है। इन्हीं कारणों से मेरा विश्वास यह है कि नवें चित्र में जकार के सात और झकार जो ६ रूप दिखलाये गये हैं उनमे से जिस शताब्दि में चौथा जकार और चौथा झकार ऐसे थे उसी शताब्दी मे बँगला लिपि का निर्माण हुआ।

दसवें चित्र में चारो लिपियों के अक्षरो में डकार की समानता दिखलाई गई है। तकार में अन्तर अवश्य है। गुरुमुखी का तकार दसवें चित्र के तीसरे तकार से बनाया गया है, हाँ रेखा कुछ अधिक बढ़ा दी गई है। थकार मे अधिक अन्तर था। गुरुमुखी का थकार और इस चित्र के ६ थकारों में से चौथे थकार को देखिये, कैसे परस्पर मिल जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय गुरुमुखी लिपि बनी थी उस समय देवनागरी लिपि का थकार ऐसा न था जैसा कि अब है, वरन् गुरुमुखी के थकार के समान था। यह समय अनुमान से सत्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ काल था। इन अढ़ाई शताब्दियों में बहुत अन्तर पड़ गया। दकार चिरकाल से वर्तमान रूप को धारण कर चुका

था, इसीलिये सभी लिपियों में उसका एक रूप समान है। इस चित्र से और भी स्पष्ट होता है कि ये चारों लिपियाँ देवनागरी अक्षरों से निकली थीं।

चित्र नं० ११ में अक्षरों की रचना का बोध भली-भाँति हो सकता है। बकार के रूप को सुन्दर बनाने के लिये कितने साधन किये गये। भकार और मकार कैसे आरम्भिक रूपों को लेकर उठे और किस प्रकार से अन्त में जाकर एक दूसरे के सदृश बन गये। यकार और लकारों की उत्पत्ति विकास सिद्धान्त के अनुसार उसी क्रम से बनी है। मकार, यकार लकार सभी लिपियों के समान हैं, जो किंचित् अन्तर भी है वह ११ वें चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। केवल गुरुमुखी के बकार का रूप नहीं मिलता। उसका कारण कदाचित् असुविधा के विचार से परिवर्तन कर देना हो।

१२ वें चित्र में केवल बकार, षकार और सकार तीन अक्षर दिखलाये गये हैं। गुरुमुखी के वकार में केवल अन्तर है; शेष सब लिपियों के वकार, षकार, सकार मिलते हैं। यदि गुरुमुखी लिपि में रेफ उपस्थित न होता तो बकार को रूपान्तर में ले जाने की आवश्यकता न पड़ती। सुगमता के बिना और इसका विचार भी क्या हो सकता है?

सज्जनो! नं० ८ से १२ तक पाँच चित्रों से मैंने दूसरे प्रश्न का भी उत्तर दिया है। यदि आप भी दीर्घ दृष्टि से मेरे समान इन चित्रों पर विचार करेंगे तो आप को ज्ञात हो जायगा कि जहा अन्य सब लिपियों के बनने का काल भी हमें ज्ञात हो सकता है, चारों लिपियों की वर्णमाला देवनागरी अक्षरो से ली गई है, वहा इन लिपियों के जिन अक्षरो में परस्पर समानता है उनको छोड़ कर अन्य अक्षरो पर ध्यान देने से आप को ज्ञात हो जायगा कि किस समय में देवनागरी अक्षरों का क्या रूप था और उनसे कैसे अन्य लिपि वालों ने अपनी अपनी वर्णमाला बनाई। इस प्रकार हम एक एक अक्षर की उत्पत्ति पर विचार कर सकते हैं, मगर समय के अभाव तथा ठीक ठीक सामग्री के न मिलने

के कारण हम इस विषय को आज यहीं विश्राम देते हैं। इस समय मैं आप के सम्मुख सात चित्र ऐसे और रक्खूंगा जिनसे आप को पता लग जायगा कि इन अढ़ाई हजार वर्षों में क्यों वर्णमाला में इतना परिवर्तन हुआ। विकास-सिद्धान्त का नाम मैंने कई बार पहिले भी लिया है। संक्षेपतः इसका भाव यह है कि जन्म दिन के पश्चात् प्रत्येक शक्ति-सम्पन्न वस्तु अपने आप को बाहर फैलाती है। फैलाने में आकार, वर्णादि सभी सृष्टिक्रमानुसार सुन्दरता को उपलब्ध करना चाहते हैं। यन्त्रालयों द्वारा इस विषय में नित्य नई से नई वर्णमाला बनती जाती है। अंग्रेजी अक्षरों में आज सैकड़ों प्रकार की वर्णमाला है जिन्हें सुन्दर अलंकारों से विभूषित और सुसज्जित किया जाता है। हिन्दी-समाचार पत्रों तथा यन्त्रालयों के द्वारा देवनागरी अक्षरों में भी सुन्दरता तथा लावण्य आता जाता है। १३ वें चित्र में ऋकार को क्रमबद्ध करने के लिये एक चार कोनी आकृति बनायी गयी है। उसमें बिन्दुओं द्वारा रेखाएँ डाली गयी हैं ताकि उसको सुडौल बनाने में एक शृङ्खलाबद्ध क्रम बन जाय, इस शैली को ड्राइङ्ग कहते हैं।

चित्र नं० १४ में जकार की आकृति दिखलायी है। जिस प्रकार स्वरों में ऋकार दिया गया है ऐसे ही व्यंजनों में जकार है। इस क्रमबद्ध नियम से समानता, रूपादि का सहसा परिचय होता है। रचना-क्रम को जानने से लिखने में सुगमता तथा सुन्दरता का भाव उत्पन्न होता है। बस, इसी क्रम से वे वर्ण जो किसी समय बेडौल और भद्दे थे आज सुडौल और सुन्दर दीख पड़ते हैं।

चित्र नं० १५ में धकार की रचना का क्रम दिया गया है, इसी क्रम के अनुसार हम इसे अलंकृत (आर्नामेंटल) करके आगे दिखावेंगे जिससे ज्ञात होगा कि शृङ्खलाबद्ध नियमों में लाने से साधारण से साधारण अक्षर भी मनोरंजक बन सकता है।

चित्र नं० १६ में अकार को पहले रचनाक्रम से एक व्यवस्थित रूप में लाया गया है। उसके पश्चात् उसमें दो प्रकार के रंगों से एक चित्र

बनाया गया है जिससे उसका सौन्दर्य अतिशय बढ़ गया है।

चित्र नं० १७ में भी वही क्रम रक्खा गया है। केवल इसकी चित्रकारी न्यारी बनायी गयी है। भिन्न भिन्न रंग भर दिये गये हैं और उन्हें ऐसे क्रम से सजाया गया है कि आँखों को भला जान पड़ता है।

१८ वां चित्र १४ वें चित्र का सजा हुआ रूप है। वहा केवल काली स्याही से ड्राइङ्ग की गई थी। मगर इस चित्र में भिन्न भिन्न चित्रकारी के संग-संग दो रंगो को मिला दिया है और एक रंग को प्रधानता देकर चित्र को सजा दिया गया है।

१६ वा चित्र पन्द्रहवे चित्र का प्रतिविम्ब है। उसमे साधारण रचना-क्रम का प्रदर्शन था, इसमें विविध रंगों की छटा है और तिस पर चित्र-विचित्र बेलों से अलंकृत करके दिखलाया गया है।

चित्र नं० १३ से १६ तक सात चित्रों से आपको विदित होगा कि वर्तमान समय में अक्षरों को उत्तम बनाने और अलंकृत करने की जो सामग्री हमारे सम्मुख उपस्थित है वह आज से दो हजार वर्ष पूर्व न थी। महाराज अशोक के समय की वर्णमाला में एक भी ऐसा अक्षर नहीं मिलता जो सौन्दर्य और लावण्ययुक्त हो। इन चित्रो को दिखलाने और अढ़ाई हजार वर्ष के अक्षरों को बार-बार बतलाने का केवल अभिप्राय यह है कि ये सभी अक्षर क्या आकार, क्या रूप और क्या सुन्दरता सब में क्रमशः उन्नत होते आये हैं।

२० वां चित्र बड़ी कठिनाई से प्रस्तुत किया गया है। इसमें बहुत सी अन्वेषण की सामग्री मिलेगी। सबसे पहले आप दूसरे खाने मे पहिली, पाँचवीं और दसवीं शताब्दी के अङ्कों पर विचार कीजिये। आप को स्पष्ट ज्ञात होगा कि पहिली शताब्दी में एक अङ्क के लिये एक रेखा, दो के लिये दो और तीन के लिये तीन रेखाएँ थीं, चार के लिये चार रेखाओ को परस्पर मिला दिया था। परन्तु पाँचवीं शताब्दी में यह क्रम बदल दिया गया। रेखाओं में अर्द्धचन्द्र के समान गोल घेरे दिये गये और दशवीं शताब्दी में उन्हीं गोल घेरों से १, २, ३ अङ्क बन गये। मैं पहले

बतला चुका हूँ कि बँगला, गुजराती और गुरुमुखी लिपियों की वर्णमाला देवनागरी अक्षरो से प्रवाहित हुई है। अब मैं बतलाऊँगा कि न केवल इन लिपियो के संग-संग देवनागरी अङ्क गये हैं परन्तु अर्बी, फ़ारसी और अङ्गरेज़ी लिपियों में भी देवनागरी अंकों से अंक लिये गये हैं। इंगलैंड आदि देशों में चौदहवीं शताब्दी से पूर्व १, २, ३, अङ्को के लिखने का क्रम यही था ज' पहली शताब्दी मे भारतवर्ष मे था। अर्थात् तीन को बतलाने के लिये तीन रेखाएँ लिखना पड़ती थी।

दसवीं शताब्दी के अंकों को पहले खाने के पहिले अंकों से मिला कर देखिये। ये वे अंक हैं जो १२ वीं शताब्दी में मिश्र देश में थे और यहाँ से यूनान और इटली पहुँचे। अब इन १२ वीं शताब्दी के अंकों को, चौदहवीं शताब्दी के अंकों के साथ मिला कर जाँच कीजिये। इनमें आप बहुत थोड़ा अन्तर पावेंगे। अब आप भारतवर्ष की दसवीं शताब्दी के अंको और मिश्र देश के बारहवी शताब्दी के अंकों और इङ्गलैंड के चौदहवीं शदाब्दी के अंको को मिलाइये, आपको बहुत थोड़ा अन्तर मिलेगा।

इधर दसवीं शताब्दी में जो अंक भारतवर्ष की देवनागरी लिपि में थे उनको दसवीं शदाब्दी को अर्बी लिपि के अंकों के साथ जोड़ कर देखिये, कितने मिलते-जुलते हैं। अर्बी लिपि से ही वर्तमान फ़ारसी लिपि निकली और उसके यहा से ही अंक आये। अब मैं आप का ध्यान इस चित्र के तीसरे खाने की ओर दिलाता हूँ। इसमें अंग्रेज़ी, देवनागरी और फ़ारसी अंको को दिखलाया गया है। जितना अधिक ध्यान देंगे, आपको उतना ही अधिक निश्चय होगा कि इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है और ये सब देवनागरी अंकों से लिये गये हैं।

सज्जनों! आज के व्याख्यान का २१ वां चित्र अन्तिम चित्र है। मैंने इस चित्र को दिखलाने की ज़रूरत इसलिये समझी है कि आजकल के वैज्ञानिक सज्जनों का विश्वास है (और कोई बुद्धिपूर्वक हेतु इसके विपरीत भी नहीं दीखता जिससे हम उनके कथन का विश्वास न करें)

कि प्राचीन समय में प्रायः सब देशों में चित्र-लिपि (फ़िगर वा पिक्चर राइटिंग) का नियम था। चीन और अमेरिका में तो इसके अनेक चिह्न मिले हैं। भारतवर्ष में अभी तक बहुत प्रमाण नहीं मिले। उनमें से भी एक ऐसा पत्थर मिल गया है जिसमें एक गोपाल की कहानी, गौओं का वर्णन, एक राज्य-कन्या को दुष्टों के हाथ से बचाने के लिए युद्ध करना आदि लिखे हैं। यह सारी कहानी चित्रों में दी हुई है और मुझे मेरे मित्र श्रीयुत गौरीशंकर ओझा (क्यूरेटर, राजपूताना म्यूज़ियम, अजमेर) ने समझाया था। यह पत्थर अजमेर में विद्यमान है। जहां तक मुझे पता मिला है यह ऐसा पत्थर है जिससे इस विषय का विद्यमान होना भी ज्ञात होता है। सारनाथ में भी ऐसे पत्थर उपस्थित हैं जिनमें जातकों का वर्णन बुद्ध के उपदेश चित्रों द्वारा मिलता है। अब मैं इस चित्र की कहानी बतलाता हूँ। अमेरिका के उत्तर में एक बड़ी झील है जिसे लेक सुपीरियर कहते हैं। इस झील के समीप एक पर्वत की कन्दरा में यह पत्थर मिला था। उस देश के वासियों का राजा, जिसका नाम किंग फिशर था, अपनी सेना को लेकर उस पर्वत की ओर युद्ध करने आया। वह एक ऐसे दूर देश से आया था जिसके आने में उसे पूरे तीन दिन लगे और एक ऐसे मार्ग से आया था जिसमें नदी पार करनी पड़ी थी। उसके संग इक्यावन मनुष्यों की सेना थी और वह सेनापति बन कर एक घोड़े पर चढ़ कर आया था, इत्यादि! अब यह सारी कहानी इसी चित्र से निकल सकती है। राजा का नाम किंग फिसर था। यह एक पक्षी का नाम भी है जिसका चित्र अन्यत्र दिया गया है, वह घोड़े पर सवार था। वह नदी से किश्तियों द्वारा गुज़रा। पाँच किश्तियों में जितने मनुष्य बैठे थे लकीरों से ज्ञात होगा कि उनकी संख्या पूरी ५१ थी। कछुआ नदी का उपलक्षण है। एक दिन तब पूरा होता है जब सूर्य्य उदय होकर अस्त हो। आकाश को गोल बनाकर तीन गोल-गोल गेंद सूर्य्य के आकार को बतलाते हैं। पर्वत में सेना तब ही पहुँची जब शत्रु सेना को परास्त कर दिया। जिस प्रकार से यह कहानी बनायी गई है, इसी प्रकार शिलाओं से आजकल

वैज्ञानिक तत्त्ववेत्ता प्राचीन काल का इतिहास निकालते हैं और इस प्रकार की शिलाएँ समय-समय पर भारतवर्ष में बहुत मिलेंगी। मगर यह जानना अभी कठिन है कि जिस समय शिलाओं पर चित्र बनाये गये थे उस समय भारतवासियों की कोई लिपि न थी, या यह कि अन्य देशों के समान इन्हीं चित्रों से भारतवासियों ने अपनी लिपि की वर्णमाला का निर्माण किया।

सज्जनों। इन चित्रों से आप अपने प्राचीन सभ्यता के गौरव, अपनी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भाषाओं की लिपियों के सम्मेलन को भली भाँति जान गये होंगे। यदि मेरे इस व्याख्यान से देवनागरी अक्षरों की लिपि में आप की श्रद्धा हो गयी और आप को अपने देश के कल्याण के लिये इस लिपि को राष्ट्रीयता का रूप देना अभीष्ट प्रतीत होता हो तो मैं समझूँगा कि मेरा परिश्रम निष्फल नहीं गया।

परिशिष्ट

नागरी अंकोंकी उत्पत्ति का चित्र

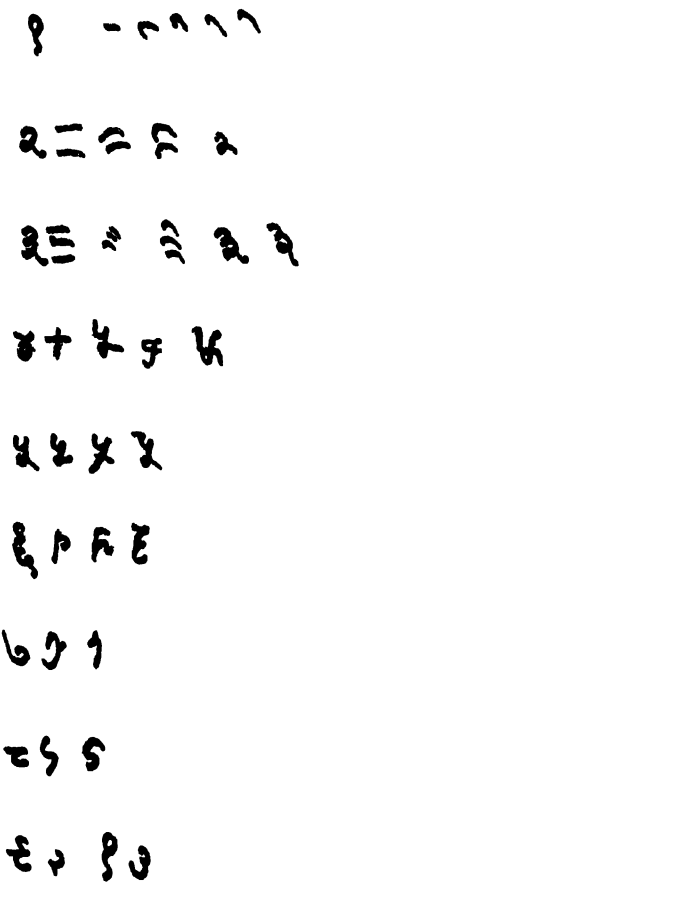

नागरी अक्षरों की उत्पत्ति का चित्र

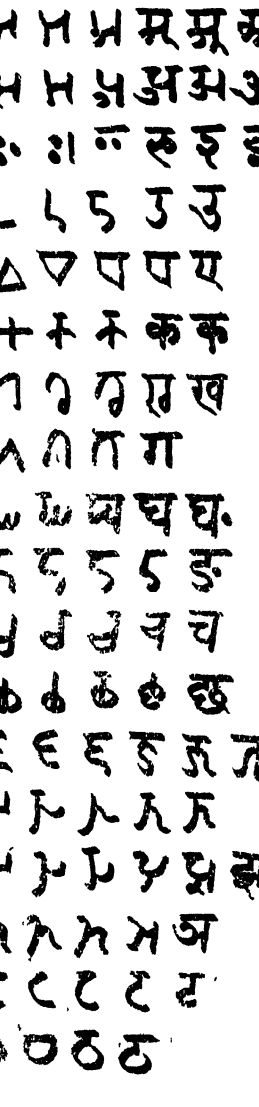

ड =
ढ =
ण =
ण =
त =
थ =
द =
ध =
न =
प =
फ =
ब =
भ =
म =
य =
र =
ल

व =
श =
ष =
स =
ह =
ळ =
क्ष =
ज्ञ =
का =
कि =
की =
कु =
कू =
के =

चित्र नं० १

चित्र नं० २

चित्र नं० ३

चित्र नं० ४

चित्र नं० ५

चित्र नं० ७

चित्र नं० ६

चित्र नं० ८

चित्र नं० ६

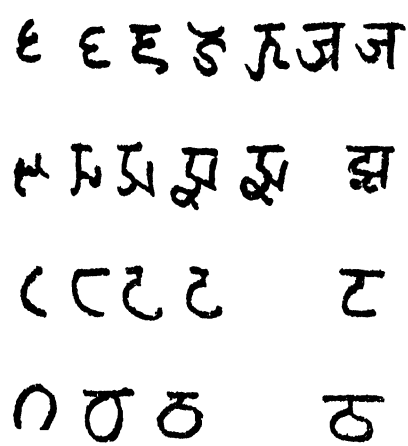

चित्र नं० १०

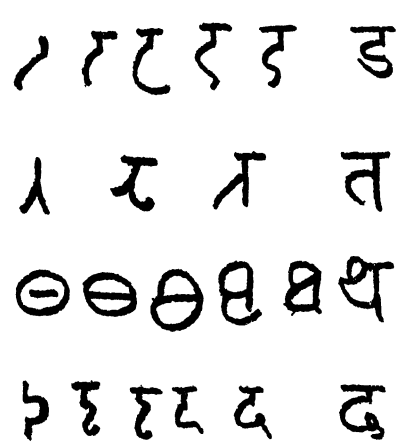

चित्र नं० ११

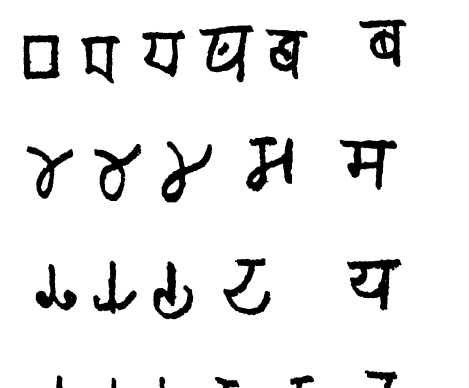

चित्र नं० १२

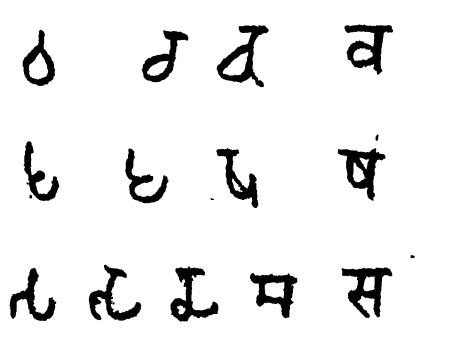

चित्र नं० १३

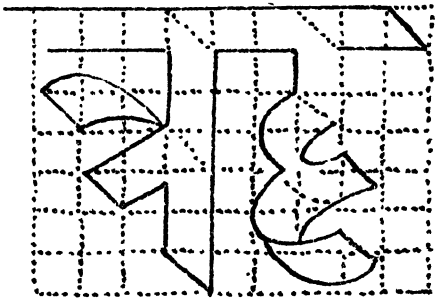

चित्र नं० १४

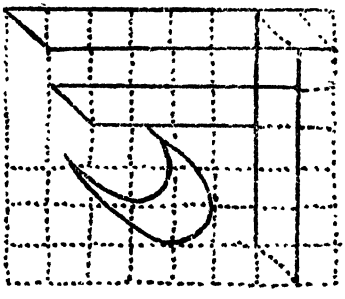

चित्र नं० १५

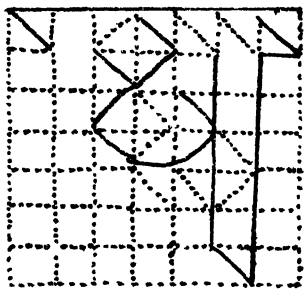

चित्र नं० १६

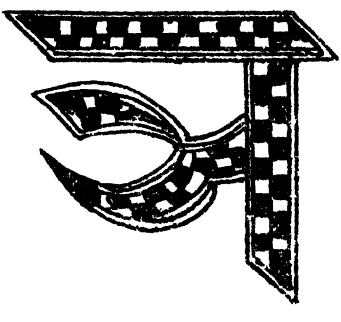

चित्र नं० १७

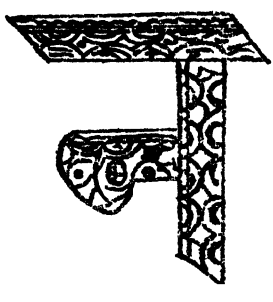

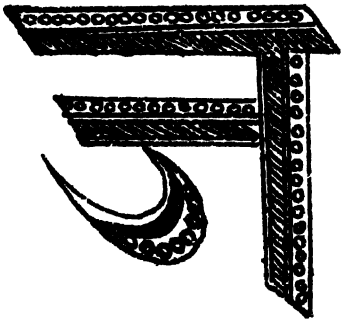

चित्र नं० १८

चित्र नं० १९

चित्र नं० २०

चित्र नं० २१

Picture writing by the Indians on Lake Superior.